१२. भक्तियोग

अर्जुन बोले— जो भक्त सतत युक्त होकर पूर्वोक्त प्रकार से (आपके इस कृष्णस्वरूप सगुण साकार रूप की) उपासना करते हैं और जो भक्त मन और वाणी से परे (अव्यक्त) अक्षर ब्रह्म को निराकार मानकर उसकी उपासना करते हैं, उन दोनों में कौन उत्तम योगी है. (१२.०१)

श्रीभगवान बोले— जो भक्तजन मुझ में मन को एकाग्र करके नित्ययुक्त होकर परम श्रद्धा और भक्ति से युक्त होकर मुझ परब्रह्म परमेश्वर के (कृष्णस्वरूप) सगुण रूप की उपासना करते हैं, वे मेरे मत से श्रेष्ठ हैं. (६.४७ भी देखें) (१२.०२)

परन्तु जो मनुष्य अक्षर, अनिर्वचनीय, अव्यक्त, सर्वगत, अचिन्त्य, अपरिवर्तनशील, अचल और सनातन ब्रह्म की उपासना इन्द्रियों को अच्छी तरह नियमित करके, सभी में समभाव होकर, भूतमात्र के हित में रत रहकर करते हैं, वे भी मुझे प्राप्त करते हैं. (१२.०३-०४)

परन्तु उन अव्यक्त में आसक्त हुए चित्त वाले मनुष्यों को (साधना में) क्लेश अधिक होता है, क्योंकि देहधारियों द्वारा अव्यक्त की गति कठिनाई पूर्वक प्राप्त होती है. (१२.०५)

परन्तु हे अर्जुन, जो भक्त मुझको ही अपना परम लक्ष्य मानते हुए सभी कर्मों को मुझे अर्पण करके अनन्य भक्ति के द्वारा मेरे साकार रूप का ध्यान करते हैं, ऐसे भक्तों का — जिनका चित्त मेरे सगुण स्वरूप में स्थिर रहता है — मैं शीघ्र ही मृत्युरूपी संसार सागर से उद्धार कर देता हूं. (१२.०६-०७)

तुम मुझ में ही अपना मन लगाओ और बुद्धिसे मेरा ही चिन्तन करो, इसके उपरान्त निस्संदेह तुम मुझ में ही निवास करोगे. (१२.०८)

हे धनंजय, यदि तुम अपने मन को मुझ में स्थिर करने में असमर्थ हो, तो तुम (पूजा, पाठ आदि के) अभ्यास के द्वारा मुझे प्राप्त करने की इच्छा से प्रयत्न करो. (१२.०९)

यदि तुम अभ्यास करने में असमर्थ हो, तो मेरे लिए अपने कर्तव्य कर्मों का पालन करो, कर्मों को मेरे लिए करते हुए तुम मेरी प्राप्तिरूपी सिद्धि पाओगे. (९.२७, १८.४६ भी देखें) (१२.१०)

यदि इसे भी करने में तुम असमर्थ हो, तो मुझपर आश्रित होकर, मन पर विजय प्राप्त कर, सब कर्मों के फल की आशा का त्याग करो. (१२.११)

मर्म जाने बिना अभ्यास करने से शास्त्रों का ज्ञान श्रेष्ठ है, ज्ञान से परमात्मा के स्वरूप का ध्यान श्रेष्ठ है, और सब कर्मों के फल में आसक्ति का त्याग ध्यानसे भी श्रेष्ठ है, क्योंकि त्याग से तत्काल परम शान्ति की प्राप्ति होती है. (१२.१२)

जो मनुष्य सभी प्राणियों से द्वेषरहित है, सबका प्रेमी है, दयालु है, ममता और अहंकार से रहित है, सुख और दुःख में सम, क्षमाशील और संतुष्ट है; जो अपने मन और इन्द्रियों को वश में करके मुझ में दृढ़निश्चय होकर अपने मन और बुद्धि को मुझे अर्पण करके सदा हमारा ही ध्यान करता है, ऐसा भक्त मुझे प्रिय है. (१२.१३-१४)

जिससे कोई व्यक्ति उद्वेग प्राप्त नहीं करता तथा जो स्वयं भी किसी से उद्विग्न नहीं होता; जो सुख, दुःख, भय और उद्वेग से मुक्त है, वह मुझे प्रिय है. (१२.१५)

जो आकांक्षारहित, शुद्ध, कुशल, पक्षपात से रहित, सुखी और सभी कर्मों में अनासक्त है, वैसा भक्त मुझे प्रिय है. (१२.१६)

जो न किसी से द्वेष करता है, न सुख में हर्षित होता है और न दुःख में शोक करता है; जो कामना रहित है तथा शुभ और अशुभ दोनों कर्मों के फल का त्याग करने वाला है, वैसा भक्तियुक्त मनुष्य मुझे प्रिय है. (१२.१७)

जो शत्रु और मित्र, मान और अपमान, सर्दी और गर्मी तथा सुख और दुःख में सम है; जो आसक्ति रहित है, जिसे निन्दा और स्तुति दोनों बराबर है, जो कम बोलता है, जो कुछ हो उसी में संतुष्ट है, जिसे स्थान में आसक्ति नहीं है तथा जिसकी बुद्धि स्थिर है, ऐसा भक्त मुझे प्रिय है. (१२.१८-१९)

जो श्रद्धावान भक्त मुझे ही अपना परम लक्ष्य मानकर उपरोक्त धर्ममय अमृत का जीवन जीते हैं, वे तो मुझे बहुत ही प्रिय हैं. (१२.२०)

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे भक्तियोगो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥